International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 5; May 2017; Page No. 394-397

राष्ट्रीय काव्यधारा : एक अध्ययन

अंशुला मिश्रा

अतिथि विद्वान, हिन्दी, शासकीय इन्द्रा गांधी कन्या महाविद्यालय, शहडोल, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश

राष्ट्र राष्ट्रीयता अपने राष्ट्र के प्रति वह प्रेमभाव है, जो राष्ट्र के उद्भव तथा विकास की रेखाओं में बँधकर चलता है। जब तक राष्ट्रीयता मात्र प्रेम–भाव प्रदर्शन तक सीमित होती है, इसका रूप सांस्कृतिक होता है, किन्तु जब उसका उद्देश्य राष्ट्र का निर्माण, विकास होता है, तब उसका रूप राजनीतिक होता है। इसीलिए राष्ट्रीयता कभी सांस्कृतिक तथा कभी राजनीतिक रूप में परिलक्षित होती है। 19वीं शताब्दी की राष्ट्रीय चेतना में राजनीति तत्व को समाविष्ट करने का श्रेय मेजिनी को है, जिसने यह स्थापित किया कि राजनीतिक तथा राष्ट्रीय सीमाएँ एक हों। बाद में नैपोलियन तृतीय ने इस स्थापना को कार्यान्वित करने का प्रयास किया। इस काल के बाद से प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्देश्य राष्ट्रीय राज्य का निर्माण, रक्षा और उसकी शक्ति का विकास हुआ। विल्सन के आत्म–निर्णय के कार्यक्रम ने इसको बल दिया और यूरोप में अनेक राष्ट्रों में सार्वजनिक प्रभु–सत्ता की स्थापना की गई, जिसका विकास कालक्रमेण राष्ट्रीय जनतंत्र के रूप में हुआ। जो राष्ट्र गुलाम होता है, वहाँ सांस्कृतिक राष्ट्रीयता पर राजनीतिक राष्ट्रीयता प्रमुख हो जाती है। उस राष्ट्र के निवासियों का चरम उद्देश्य स्वतन्त्रता प्राप्त करना होता है। परतंत्र देश में शोषण आदि की समस्याएँ भी होती हैं और उनके निवारण के लिए बलिदान भी करना होता है। मेजिनी ने ठीक ही कहा है कि सदियों से परतन्त्र राष्ट्र अपने आदर्श तथा आत्म–बलिदान के द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति की आकांक्षा विदेशियों के प्रति घृणा एवं द्वेष के आधार पर फूलती–फलती है। इस प्रकार राष्ट्रीयता की भावना का सम्बन्ध राजनीति से हो जाता है शासक नीति की राजनीतिक गतिविधि का शासित जाति की राष्ट्रीयता से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित है, क्योंकि उक्त गतिविधि के आधार पर ही राष्ट्रीयता की भावना तीव्र अथवा मन्द होती है।

मूल शब्दः राष्ट्रीय काव्यधारा, सुभद्रा कुमारी चौहान, गुप्त, दिनकर, चतुर्वेदी।

प्रस्तावना

सांस्कृतिक जीवन का अग्रदूत साहित्यकार (कवि) के जीवन की भी पहली शर्त है। व्यक्ति स्वातंत्र्य। जिस अनुपात में उसकी स्वतंत्र चेतना की सीमाओं और विवशताओं में बांधा जाता है उसी अनुपात में उसकी रचना अपूर्ण रह जाती है। उसकी स्वतन्त्र चेतना को जितना ही अधिक मुक्त रखा जाता है, वह जीवन की अनेक संभावनाओं की अभिव्यक्ति के द्वारा उत्कृष्ट काव्य रचना प्रस्तुत करती है। विश्व–साहित्य की सर्वोत्तम कृतियाँ कवि की स्वतंत्रता के फलस्वरूप ही उत्पन्न हुई हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रख भारतीय शास्त्रों में "निरंकुशाः कवयः" कहा गया है। कवि की स्वतन्त्रता के हिमायती कवि को किसी सत्ता, मान्यता आदि के बन्धनों में बँधने वाला नहीं मानते। वे कवि को समाज के प्रति उत्तरदायी नहीं मानते। वे रचना का मूल उद्देश्य स्वांतः सुखाय समझते हैं। स्वांतः सुख के लिए कवि जिन अनुभूतियों का चयन जीवन के विविध क्षेत्रों से करता है, उनसे जनहित भी हो जाता है, लेकिन वह कवि का गौण का विषय है। जहाँ रवि की भी गति कुंठित है वहाँ भी कवि की प्रतिभा प्रविष्ट है, ऐसी उक्ति प्रचलित है।[1]

कवि की स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं कि कवि नैतिक बन्धनों से रहित होकर उच्छृंखलताओं पर उतर आए और अपनी अनैतिक रचनाओं से अराजकता फैला दे। स्वतन्त्रता के पक्षधर यह दलील देते हैं कि कवि क्रान्तदर्शी होता है, उसमें युगीन चेतना का जितना अधिक प्रस्फुटन होता है, उतना अन्य मानवों में नहीं। तब यह कैसे संभव है कि वह अपनी रचनाओं में उच्छृंखल हो जाय। इस स्वतन्त्रता का अर्थ दायित्वहीनता नहीं है, वरन् मर्यादा का निर्वाह है। कवि के समान चेतन प्राणी व्यक्ति स्वातन्त्र्य के द्वारा अपने सामाजिक दायित्व की रक्षा ही कर सकेगा। काव्य–रचना का उदाहरण देते हुए यह कहा जा सकता है कि स्वातन्त्र्य जब कवि को मिला तो उसने भक्ति–युग में अपूर्व काव्य हमें दिया है, किन्तु जब राजाश्रयों में पलने वाली रीतिकालीन कविता पर आश्रयदाता की प्रशंसा एवं मनोरंजन का बन्धन लगाया गया तो उत्कृष्ट रचनाएँ नहीं हो सकीं। उनमें स्थूलता एवं चमत्कार का बाहुल्य ही रहा। वास्तव में जहाँ कवि की प्रतिभा को स्वतंत्रता नहीं रहती, वहाँ काव्य–चेतना का हनन होता है। जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता कवि को नहीं है, वहाँ उसकी वृत्तियाँ आत्मनिष्ठ हो जाती हैं। उसका साहित्य अन्तर्मुख हो जाता है। बाह्य जगत् से दृष्टि खींचकर कवि अन्तर्मुख मन पर दृष्टि डालता है। छायावादी युग के पूर्व जब कवि की स्वतन्त्रता पर आक्षेप हुआ तो छायावाद का जन्म हुआ। उसका अहं ही समाज और परिस्थिति का सत्य बन गया। वह जग–दर्शन नहीं, अपितु आत्म–दर्शन करता है। इसे संघर्ष से, जीवन–जगत् की सच्चाइयों से पलायन भी कहा जाता है।

व्यक्ति स्वातंत्र्य के युग में कवियों ने अपने युग के आश्रयदाताओं की विलास–भावना की तृप्ति के लिए रचनाएँ की अथवा जीवन के संघर्ष से दूर भागकर व्यक्तिगत आनन्द को ही कला का उद्देश्य ठहराया तो प्रतिक्रिया स्वरूप समाज–चेतना का नारा उठाया गया और कहा गया कि जनता के लिए साहित्य–रचना होनी चाहिए, वह केवल महलों की ही विरासत न बने। "कला के लिए" सिद्धान्त की निस्सारता सिद्ध की गयी कि साहित्य विचारों की अनुभूति है, उसका समाज से कोई अलग अस्तित्व नहीं है। स्टालिन के शब्दो में "कलाकार मानव आत्मा का इंजीनियर है।" उसकी रचना का उद्देश्य कला अथवा मन–बहलाव नहीं, बल्कि समाज का भौतिक और सांस्कृतिक कल्याण होना चाहिए।[2]

कवि को समाज के प्रति उत्तरदायी होने का मतलब यह नहीं है कि वह किसी वर्ग विशेष का झण्डादार बने। कवि बाह्य जगत् की अनुभूतियों से प्रभावित होता है और उन अनुभूति–खण्डों का आकलन अपने काव्य में करता है, जिससे समाज को एक नई प्रेरणा मिले, गति मिले। यदि वह समाज को छोड़कर आत्म–रति के

धोधे में छिप जाता है, सामाजिक संघर्षों, वास्तविक जीवन से दूर रहता है तो उसका काव्य ह्रासमूलक हो उठता है। रस एवं सौन्दर्य की अनुभूति की अभिव्यक्ति करने वाला काव्य भी समाज–निरपेक्ष नहीं होता। वह समाज से प्रेरणा ग्रहण करता है और अपने जीवन के लिए सामाजिक परिस्थितियों तथा वृत्तियों के अनुरूप परिवर्तित होता है। इसी प्रकार सामाजिक जीवन के परिवर्तन के साथ ही मानव की सौन्दर्यानुभूति में भी परिवर्तन होते हैं।

कवि मात्र वर्ग–चेतना का गायक ही नहीं है। उसकी वाणी पर राज–सत्ता की मुहर की भी अपेक्षा नहीं है। वह राजनीति का अनुचर नहीं है। साहित्य स्वतन्त्र है और उसका संवाहक कवि भी स्वतन्त्र है, किन्तु राजकीय दण्डविधान से मुक्ति का यह तात्पर्य नहीं कि वह अपने साहित्य के लिए समाज के प्रति उत्तरदायी नहीं है। कवि सामाजिक प्राणी है। इसलिए उसे यह अधिकार नहीं कि वह अपनी अनैतिकता से सम्पूर्ण समाज को अनैतिक बना दे। वह लोक–मंगल से अलग रहकर जी ही नहीं सकता। सच्चा कवि तो वही है जो स्वतन्त्र होकर अनुत्तरदायी नहीं है। वह समाज की प्रत्येक गतिविधि से प्रेरणा ग्रहण करता है तथा विषम परिस्थितियों में जनभावना को तीव्रता तथा उत्साह प्रदान करता है।

राजनीतिक राष्ट्रीयता में राष्ट्र राजनीतिक विकास की दिशा प्रशस्त की जाती है। इसका पर्यवसान जनवादी भाव–धारा में होता है। राजनीतिक राष्ट्रीयता सम्पूर्ण राष्ट्र को एक इकाई मानती है। इस इकाई के प्रति प्रेम–भाव उसमें होता है, खण्ड के प्रति नहीं। खण्ड के प्रति प्रेम–भाव भूमि तथा जन की खण्डित चेतना है। वह राष्ट्रीय भावना को विश्रृंखलित कर देता है। राजनीतिक राष्ट्रीयता इस खण्ड को ग्रहण नहीं करती। वह राष्ट्र की भूमि तथा जन को समग्रता में अपनाती है। यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीयता की भावना प्रत्येक काल में होती है, लेकिन परतन्त्रता तथा विदेशी आक्रमण के काल में इसमें अधिक तीव्रता आती है। इस अवसर पर बलिदान एवं उत्सर्ग की भावना का भी उद्‌भव एवं विकास होता है।

कवि अपने काव्य में जन–मानस को प्रतिफलित करता है तथा उसे नई दिशा देने का प्रयास करता है। जब राष्ट्र प्रभुत्व सम्पन्न राज्य होता है, उसके विकास की दिशा में कविता गतिशील होती है। विदेशी आक्रमण तथा परतन्त्रता की स्थिति में विदेशी शक्ति को देश के बाहर निकालने के लिये वह जन–मानस में उत्सर्ग एवं बलिदान की प्रेरणा भरती है। सांस्कृतिक उन्नयन की ओर कविता प्रवृत्त होती है तथा पुनरुत्थान की कामना करती है।

राष्ट्रीय काव्य से आशय

हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का जो रूप आधुनिक काल में दृष्टिगत होता है उसकी एक परम्परा संस्कृत साहित्य से होती हुई आई है। यह बात दूसरी है कि उसका जो रूप हमें आधुनिक काव्य में मिलता है, वह सम्पूर्ण संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश तथा हिन्दी काव्य के आदि, भक्ति और रीति कालों में नहीं है। इसका कारण है कि आधुनिक राष्ट्रीय भावना आधुनिक युग की देन है। इसलिए उसका पूर्ण प्रतिफलन आधुनिक हिन्दी काव्य में ही हुआ है। लेकिन इतना स्पष्ट है कि आधुनिक राष्ट्रीयता की आंशिक अभिव्यक्ति उक्त काव्यों में अवश्य हुई है। आंशिक इसलिए कि राष्ट्रीयता के भूमि, जन और जन की संस्कृति सम्बन्धी विविध तत्वों में से कुछ की अभिव्यक्ति उनमें है। राष्ट्रीयता के सांस्कृतिक पक्ष की अभिव्यक्ति संस्कृत काव्य की विशेषता रही है। राष्ट्र बनाने, उसकी रक्षा करने, उसके प्रति अनुराग प्रकट करने की प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब संस्कृत साहित्य में है। जन्म–भूमि के प्रति प्रेम की संस्कृति काव्य में अनेक उक्तियाँ हैं। स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन के विकास की ओर संस्कृत साहित्य का झुकाव रहा है। इसीलिए उसमें राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति मानित है। राधा कुमुद मुखर्जी के अनुसार "पितृ–भूमि के प्रति उत्कृष्ट प्रेम भाव साहित्य में आदि से लेकर अन्त तक अभिव्यक्त है।"[3]

इससे स्पष्ट है कि हिन्दी में राष्ट्रीय काव्य उसे ही माना गया है, जिसमे देश–प्रेम की भावना प्रबल हो। ऐसा काव्य उस समय खूब रचा जाता है, जब देश में राजनीतिक गुलामी हो अथवा उस पर कोई बाह्य आक्रमण हो। किन्तु श्री शिवदान सिंह चौहान कबीर से हिन्दी राष्ट्रीय काव्य का प्रारम्भ मानते हैं। इस प्रकार पुनर्जागरण विषयक कविताओं का स्थान भी राष्ट्रीय साहित्य के अन्तर्गत आ जाता है।

जो लोग देश–प्रेम अथवा विदेशी दासता की प्रतिक्रिया स्वरूप रचे काव्य को ही राष्ट्रीय काव्य मानते हैं, उनके लिये आधुनिक काल से भारतेन्दु, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, दिनकर आदि ही राष्ट्रीय कवि हैं, लेकिन किसमें इतना साहस है कि तुलसी–सूर जैसे कवियों को अराष्ट्रीय कहे। तब इन्हें भी राष्ट्रीय कवि कहना ही होगा, क्योंकि इनके काव्य में जातीय जागरण की झलक है, अभिव्यक्ति है और है उसकी जीवन्तता का स्वरूप। उनकी कविता का आधार जातीय है और अपनी रचनाओं के द्वारा उन्होंने जातीय प्रगति और आजादी की आकांक्षा उत्पन्न की। इस प्रतिमान के आधार पर शायद ही कोई कवि अराष्ट्रीय सिद्ध हो और तब सम्पूर्ण काव्य को हमें राष्ट्रीय मानना पड़ेगा।

राष्ट्रीय काव्य और नवजागरण

भारतेन्दु इस युग की राष्ट्रीय चेतना के प्रबल उन्नायकों में थे। उन्होंने राष्ट्रीय गीत गाये और जन–मानस में राष्ट्रीय भावना जगाई। इसलिए उनके नाम से इस युग को अभिहित करना सर्वथा युक्तियुक्त है।

भारतेन्दु का काल राजनीतिक दृष्टि के नवजागरण का काल कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में जिस राजनीतिक भावना का उद्‌भव हुआ, उसका भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है।

1920 ई. से भारत के राष्ट्रीय जागरण के इतिहास को नयी दिशा मिली। इसके दिशानायक थे गांधी जी। उन्होंने सत्याग्रह और सहयोग के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना में कर्मयोग की क्रांति का सूत्रपात किया। द्विवेदी युग की राष्ट्रीय भावना मंच की चेतना थी, लेकिन कर्मयोगी गांधी ने उसे लोक चेतना की सक्रियता प्रदान की। मंचीय भावना की राष्ट्रीयता का सम्पर्क जन–जीवन से उतना नहीं था और न उसमें कर्म की प्रेरणा ही अधिक थी। छायावाद युग में राष्ट्रीय भावना को लोक–शक्ति मिली और कर्म की गतिमयता प्राप्त हुई। इसलिए इस युग में राष्ट्रीय काव्य–धारा एक नयी शक्ति लेकर प्रवाहित होती है।

राष्ट्रीय काव्यधारा के कवि

सुभद्रा कुमारी चौहान का समय छायावादी युग रहा है और यह आधुनिक हिन्दी कविता के स्वाभाविक विकास की एक महत्वपूर्ण मंजिल है, जहाँ पहुँचकर हिन्दी कविता भक्तिकालीन काव्य की ऊँचाई को पुनः प्राप्त कर सकी है। इसके द्वारा काव्य–परम्परा में जो परिवर्तन उपस्थित हुआ और जिस नव्यता की प्रतिष्ठा हुई, वह निश्चित ही एक महान् उपलब्धि है। समष्टि रूप में इसमें वाह्य जगत् की अपेक्षा अन्तर्जगत् (कवि का भावलोक), बौद्धिकता की अपेक्षा भावात्मकता, जीवन के यथार्थ की अपेक्षा मनःलोक की मनोरम कल्पना, नग्न सत्य की अपेक्षा कल्पना–वेष्टित सौन्दर्य, संघर्ष की अपेक्षा प्रेम और परम्परा की अपेक्षा नूतनता के प्रति अधिक मोह रहा है।[4] इसका प्रभाव साहित्य के क्षेत्र में बहुत दूर तक परिलक्षित होता है।

छायावादी काव्यधारा का विकास तीन सोपानों में हुआ। प्रथम सोपान उसका आरम्भिक काल है। इसमें मुकुटधर पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, पन्त तथा 'इन्दु' में प्रकाशित प्रसाद की रचनाएँ आती हैं। छायावाद के प्रौढ़काल में प्रसाद, पन्त निराला तथा महादेवी वर्मा की सन् 1936 ई. तक की रचनाएँ परिगणित की जाती है। तीसरे में निराला, पन्त, रामकुमार वर्मा, बच्चन, अंचल, नवीन, नरेन्द्र शर्मा आदि की यथार्थवादी तथा लोकोन्मुखी रचनाएं आती हैं।

प्रसाद, पन्त, महादेवी के अतिरिक्त राष्ट्रवादी काव्यधारा के कवियों में रामधारी सिंह 'दिनकर', मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' इन उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त छायावादी काव्यधारा के अन्य कवि भी हैं जिनकी रचनाओं में छायावादी प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। इस दृष्टि से डॉ. रामकुमार वर्मा की 'रूपराशि', 'निशीथ', 'चित्ररेखा', 'आकाश गंगा' उल्लेखनीय हैं। इसमें प्रकृति–चित्रण, रहस्यवादी भावना, राष्ट्रीयता तथा मानवतावाद की प्रतिष्ठा हुई है। उदयशंकर भट्ट की 'राका', 'मानसी', 'विसर्जन', 'युगदीप', 'अमृत और विष' आदि कविता–संग्रहों में मानवीकरण, सर्ववादी चेतना, कल्पना–प्रवणता, वैयक्तिकता तथा राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति हुई है। भगवतीचरण वर्मा ने 'मधुकण' (1931) की रचना की जिसमें व्यक्तिगत प्रणयानुभूति दिखाई देती है। मोहनलाल महतों ने 'निर्माल्य' (1926), 'एकतारा' तथा 'कल्पना' नामक काव्य ग्रन्थों की रचना की। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'अन्तर्जगत' नामक काव्य–संग्रह का प्रणयन किया। जनार्दन प्रसाद झा की 'अनुभूति' और 'अन्तर्ध्वनि', गोपाल सिंह नेपाली की 'पंछी और रागिनी', केदारनाथ मिश्र की 'चिरस्पर्श', 'सेतुबन्ध', आरती प्रसाद सिंह की 'कलापी' आदि कृतियों में छायावादी भाषा–शैली दिखाई देती है।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा से जुड़ी कुछ अन्य कवियों की भी रचनाएँ हैं जो देश की राजनीतिक और सांस्कृतिक एकता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। रामनरेश त्रिपाठी ने 'मानसी' (1927), 'पथिक' (1920), 'स्वप्न' (1929) नामक खण्डकाव्यों की रचना की जिसका एकमात्र उद्देश्य सुषुप्त भारतीयों को जाग्रत कर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष जारी रखना था। इसके अतिरिक्त उदयशंकर भट्ट की 'तक्षशिला' (1929) जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द की 'जीवन–संगीत', दिनकर की 'रेणुका' (1935), मैथिलीशरण गुप्त की 'स्वदेश संगीत (1925), गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की 'राष्ट्रीय मंच' (1921), केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' की 'ज्वाला' (1929), महेशचन्द्र प्रसाद की 'काँग्रेस शतक" (1936) आदि रचनाएँ राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं जिससे भारतीय जन–मानस को नयी चेतना और दिशा मिली।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में छायावादी कविता की पृष्ठभूमि व्यापक और अन्तर्राष्ट्रीय है। इस काव्यधारा पर स्वच्छन्दतावाद और साम्यवाद के स्वरों का पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। छायावादी परिस्थितियाँ राष्ट्रीय संगीत का सृजन करती हैं। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा, मुकुटधर पाण्डेय, भगवतीचरण वर्मा आदि की कविताओं को राष्ट्रीय तथा मानवीय मूल्यों ने सर्वाधिक रूप से प्रभावित किया है।

छायावादी कविता का स्वर आरम्भ में अनभ्यास के कारण अपरिचित–सा लगा था, पर अब उसमें अपनी मानसिक और सामाजिक भूमिका स्पष्टतः दिखाई देती है। राष्ट्र, मानव, प्रकृति और समाज के विवेकसम्मत मूल्यों एवं अस्तित्व की स्थापना में संलग्न छायावादी कविता आज के उपयोगितावादी युग के संघर्ष, साधना, सत्यान्वेषण और अतीत के विन्ध्वंश को ईमानदारी के साथ व्यक्त कर रही है। इस युग के साहित्य में वास्तविक प्रजातंत्र के मूल्य स्पष्टतः मुखरित हुए हैं।

शोध पत्र के अनुरूप मैं प्रबन्धकीय दृष्टि से उन राष्ट्रीय काव्य धारा के कवियों का विवेचन करना चाहती हूँ जिनकी राष्ट्रवादी मौलिक धारणाएँ लोकहित में पायी जाती हैं –

रामधारी सिंह 'दिनकर'

राष्ट्रवादी कवि रामधारी सिंह 'दिनकर; की प्रतिभा यथार्थ की भूमि ग्रहण करती है और युग की भूमि में सांस लेती है। इस कवि का अपने युग से अनिवार्य और अविछिन्न सम्बन्ध था। कवि की रचना युग से ज्यादा प्रभावित है और वह युग की समस्याओं और गतिविधियों को अपने काव्य में मुखरित करता है। रामधारी सिंह 'दिनकर' इसी कोटि के रचनाकार थे, वे साहित्य और समाज के सजग प्रहरी थे।

देश के प्रति प्रेम और निष्ठा रखना प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य होता है। जिस देश के अन्न–जल को ग्रहण करके व्यक्ति बड़ा हो, उसके प्रति मर–मिटने की भावना ही सच्चे देशप्रेमी की परिभाषा है। छायावादी कवियों में देशभक्ति को एक सांस्कृतिक आचरण से मण्डित किया है। उसमें केवल आवेग ही नहीं, किन्तु एक स्थायी ताप है।[5] उन्होंने देश के प्रति अगाध स्नेह और प्रेम प्रदर्शित किया। उनकी रचनाएँ देशभक्ति और राष्ट्रीयता का ज्वलन्त दस्तावेज हैं।

देशप्रेम की भावना विकसित होने पर व्यक्ति की आत्मीयता बढ़ जाती है और उसे कण–कण में मातृभूमि की प्रतिच्छवि झलकने लगती हैं। उस देश के समस्त नर–नारी, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे अपने जाने–पहचाने से लगने लगते हैं तथा उनका दुःख–दर्द अपना मालूम पड़ता है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में – "जब मनुष्य के राग–वृत्ति का विस्तार होता है, तो वह अपने व्यक्तित्व से परिवार, परिवार से ग्राम, नगर, फिर प्रदेश, देश और इसके आगे विश्व तक व्यापक हो जाता है।..... 'देशभक्ति'में 'स्व' का वृत्त समग्र देश और उसके निवासियों तक विस्तृत हो जाता है।"[6]

मैथिलीशरण गुप्त

भारतवर्ष अपनी संस्कृति और सभ्यता के लिए विश्वविद्युत है। किसी समय यह देश जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित था। यहाँ की प्रचुर धन–सम्पदा देखकर विदेशियों का मन ललचाता था। अंग्रेजों के आगमन से हमारे देश का मनमाना शोषण हुआ और भारतीय संस्कृति को भी आघात पहुंचा। द्विवेदी युगीन कवियों ने भारतीय संस्कृति का गौरवगान करते हुए यहां के लोगों में स्वाभिमान की भावना जागृत की। इससे भारतीयों की सुप्तचेतना उद्दीप्त हो उठी तथा आत्मविश्वास और राष्ट्रीयता का स्फुरण हुआ।

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतर्वेदी (1889–1968) का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के बाबई ग्राम में हुआ था। इनके पिता इसी ग्राम के स्कूल में अध्यापक थे। इसलिए उनकी आरम्भिक शिक्षा वहीं हुई। अपने जीवन का आरम्भ इन्होंने एक अध्यापक से किया। इन्होंने 'प्रभा प्रताप' तथा 'कर्मवीर' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया। इनका 'उपनाम' 'एक भारतीय आत्मा' था। प्रारम्भिक काल में इन्होंने क्रान्ति का सहारा लिया, किन्तु बाद में बापू के सत्य और अहिंसा से प्रभावित होकर उन्हीं के अनुयायी बन गये। छायावाद–युग के इनके प्रमुख कविता संग्रह 'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरंगिनी' हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं में देशप्रेम और त्याग की भावना कूट–कूटकर भरी है। कन्हैयालाल सहल ने लिखा है – "उदात्त आदर्शों की रक्षा के लिए जो कवि बलिदान की भावना को लेकर मृत्यु की जय–जयकार कर रहा हो, जो केवल स्वप्नलोक में ही नहीं, बल्कि वास्तविक जगत् में भी राष्ट्रीय पथ का सच्चा पथिक रह चुका हो और जेलों में ही जिसके रवि उगे और अस्त हुए हों, उस कवि–काव्य की ओजस्विता और मार्मिकता का तो भला कहना

ही क्या?"[7] दिनकर ने इन्हें शरीर से योद्धा, हृदय से प्रेमी, आत्मा से विहवल भक्त और विचारों से क्रान्तिकारी बताया है।

छायावादी कवियों ने राष्ट्रवादी काव्यधारा के परिवेश में उत्तेजना का शंखनाद कर भारतीयों को चिरनिद्रा से जागृत किया। इस युग के कवियों ने ब्रिटिश शासन की नीतियों की कटु आलोचना करते हुए जनता में संगठनात्मक भावना पैदा की। यही कारण है कि माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं में सर्वत्र राष्ट्र प्रेम और उत्तेजना के तीव्र स्वर विद्यमान है उन्होंने निर्भीकतापूर्वक राष्ट्रीय भावना का प्रचार–प्रसार किया। उनका यह उत्तरदायित्व देश प्रेम तथा राष्ट्रीयता का द्योतक है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

नवीन जी (1897–1960) का जन्म ग्वालियर राज्य के भयाना नामक ग्राम में हुआ था। हाईस्कूल की परीक्षा सन् 1917 ई. में उत्तीर्ण करने के पश्चात् वे कानपुर पढ़ने के लिए गये। उसी समय गाँधी जी के आह्वान पर 1920 ई. में अध्ययन कार्य छोड़कर राजनीति में भाग ले लिया। स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए इन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया और अनेक बार जेल भी गये। एक अच्छे साहित्यकार होने के कारण नवीन जी ने कुछ समय तक 'प्रभा' तथा 'प्रताप' का सम्पादन भी किया। 'कुंकुम' (1939) इनका पहला काव्य–संग्रह है। 'उर्मिला' काव्य जो कि छायावाद काल में ही पूरा कर लिया गया था, का प्रकाशन 1975 ई. में हुआ। इनके अन्य काव्य–संग्रह हैं– 'अपलक', 'रश्मिरेखा', 'क्वासि', 'हम विषपायी जनम के'। इनकी प्रणय–सम्बन्धी रचनाओं में अधिकांश छायावादी प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। अतीत का गौरवगान, देश की दयनीय दशा के प्रति व्यथा और आक्रोश, स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना, दीन–दुखियों के प्रति सहानुभूति आदि इनकी कविताओं का मूलस्वर है। 'जूठे पत्ते' जैसी रचनाओं में इनका मानवतावादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। नवीन जी ने छायावाद के उत्तरार्द्ध में साहित्य सृजन आरम्भ किया था, जिससे इनकी रचनाओं में प्रगतिवादी स्वर अधिक मुखरित हुआ है।

पराधीनता किसी भी देश के लिए बहुत बड़ी घातक समस्या है। उससे जो अपमान, ग्लानि, तिरस्कार, नारकीय जीवन बिताने की यातना सहन करनी पड़ती है, उसका अनुभव पराधीन जाति ही कर सकती है। पराधीन होकर जीवन में कभी भी सुख सम्भव नहीं है – "पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।" व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र आदि सभी की उन्नति का प्रमुख साधन स्वतन्त्रता की भावना है। "स्वाधीनता का परम विकास ही परमात्मा है और स्वातंत्र्य का सम्पूर्ण अस्त ही पराधीनता है। गुलामी का रास्ता सीधा नरक में पहुँचता है और स्वर्ग–मार्ग पर अग्रसर होना ही तो दासता की श्रृंखलाएँ तोड़नी पड़ती है।"[8] स्वामी दयानन्द जी का कहना है कि "स्वदेशी राज्य सर्वोपरि है और विदेशी राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है।"[9]

निष्कर्ष

भारतेन्दु युग से राष्ट्रीय काव्यधारा का जागरण काल आरम्भ होकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी युग में पुनर्जागरण काल भारतीय राष्ट्रीय मूल्यों की स्थापना का काल कहा जाना प्रासंगिक लगता है। स्वतंत्रता की आकांक्षा की दुंदुभी पुरजोर ढंग से बजने लगी थी। इस राष्ट्रीय अभियान में मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान प्रभृति हिन्दी साहित्य के राष्ट्रीय काव्यधारा के सर्जक अपने काव्य सृजन के द्वारा राष्ट्रवाद की धारणा को प्रतिफलित होने का अवसर प्रदान कर रहे थे। हिन्दी साहित्य के पुनर्जागरण के साथ छायावादी काव्यधारा के अन्तर्गत इन्हीं राष्ट्रवादी कवियों की धारणाओं से प्रेरणाग्रहण करते हुए प्रसाद जी ने हिमाद्रितुंगभृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती का गायन करने लगे थे, वहीं महादेवी वर्मा चिर सजग आँखे उनीदी आज कैसा व्यस्त बाना, जाग तुझको दूर जाना का गायन करने लगी थी। पन्त और निराला जी के मन में भी राष्ट्रवादी हिलोरे भारत वन्दन का गुणगान करने में संचालित थी। इसी छायावादी काव्यधारा के अन्तर्गत राष्ट्रीय काव्यधारा के कवियों में सुभद्रा कुमारी चौहान की भूमिका कम कर आंकी नहीं जा सकती। सभी कवि समवेत रूप से आजादी का दीप प्रज्जवलित करने के लिए आतुर दिखाई पड़ते हैं।

सन्दर्भ

1. जहाँ न जाए रवि, वहाँ पहुँचे कवि, जनश्रुति.
2. स्टालिन.
3. राधा कुमुद मुखर्जी–स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन दर्शन.
4. छायावाद से नयी कविता, पृष्ठ 33, डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा.
5. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ 709, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, भाग एक.
6. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 19, डॉ. नगेन्द्र.
7. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 417, जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल.
8. 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम, पृष्ठ 53, वि.दा. सावरकर.
9. तत्पार्थ प्रकाश, पृष्ठ 145, स्वामी दयानन्द सरस्वती.